आचार्य द्विवेदी

साहित्य और पत्रकारिता के सरोकार

संपादक :

डॉ. बी.आर. धर्मेंद्र

संपादन-सहयोग :

डॉ. (श्रीमती) उषा धर्मेंद्र

इरावदी पब्लिकेशंस

नई दिल्ली-18

कॉपीराइट : संपादकाधीन
प्रथम संस्करण : सुभाष जयंती, 1996 ई.
प्रकाशक : **इरावदी प्रकाशन**
सी-487, विकासपुरी, नई दिल्ली-110018
दूरभाष : 5504169
ISBN 81-85720-84-3
लेजर टाइप सैटिंग : **प्रमोद कौशिक, संतोष कुमार**
इंद्रधनुष कंप्यूटर्स
5362/7 न्यू चंद्रावल, कमला नगर, दिल्ली-110007
मूल्य : रुपए **दो सौ** मात्र
मुद्रक संदीप प्रिन्टर्स
डी-13, राजौरी गार्डन, नयी दिल्ली-27
फोन-5437664, फैक्स-5100625

प्रतिबंध सूचना : **इस पुस्तक के किसी लेख अथवा अंश का उपयोग संपादक और संबंधित लेखक की लिखित अनुमति के बिना वर्जित है ।**

● डॉ. रवींद्र नाथ मिश्र

'आचार्य द्विवेदी और उनका युग'

हिंदी साहित्य में हिंदी नवजागरण का तीसरा चरण पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके सहयोगियों का काल 1900ई0 से 1920ई0 तक माना जाता है, जिसमें द्विवेदीजी को उनके विशिष्ट गुणों के कारण युग-निर्माता- लेखक, संपादक और आचार्य की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। उन्होंने अपनी भाषा, संस्कृति और राष्ट्रीयता में निजत्व का स्वर प्रखर करके जनमानस का ध्यान नवोत्थान की ओर आकृष्ट किया। भारतेंदु युगीन राष्ट्रीय, समाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलनों को इस युग में व्यापक आधार मिला। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना, बंग-भंग आंदोलन, मुस्लिम लीग की स्थापना, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, प्रथम विश्व युद्ध, रूस की क्रांति और जलियां वाला बाग की घटना आदि के कारण युगीन राष्ट्रीय भावना और तेज हुई।

पुनर्जागरण के कारण इस देश के लोगों को एक नई दृष्टि मिली, जिसकी कौंध सन् 1940ई0 तक की रचनाओं में मिलती है। इससे भारतीयों को अपनी विशिष्टता को पहचानने का अवसर मिला। इस संबंध में डॉ. बच्चन सिंह का मत है कि "इस पहचान के धरातल थे सांस्कृतिक राजनीतिक और वैयक्तिक। पहले धरातल पर बदली हुई परिस्थितियों में रूढ़ियों, अंधविश्वासों को नकार कर ठहराव और गतिरोध से आगे बढ़कर गत्यात्मक बनाने की कोशिश की गई। इस अवरोध को गोखले और तिलक ने अपने वक्तव्यों में बार-बार रेखांकित किया है। उदाहरण के लिए गोखले का एक वक्तव्य (1895ई0) उद्धृत किया जा सकता है जिसमें कहा गया है कि- वर्तमान (राजनीतिक) व्यवस्था के प्रभाव से भारतीय जाति का विकास अवरूद्ध हो रहा है। दूसरे धरातल पर वैयक्तिकता के परिप्रेक्ष्य में पहचान की अनुभूति को गहरा बनाया गया। युग की राजनीतिक बागडोर 'तिलक' के हाथों में रही, जिन्होंने "स्वराज्य मेरा जन्म-सिद्ध आधिकार है" का नारा लगाकर लोगों में नवीन राष्ट्रीय चेतना जाग्रत की, तो वहीं

दूसरी तरफ 'गीता रहस्य' लिखकर कर्मवाद का संदेश दिया। इसके साथ ही पश्चिमी शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के प्रभाव के कारण भरतीय जनमानस में नई सोच- समझ और वैज्ञानिक बुद्धि का का विकास हुआ। जिसका प्रभाव तत्कालीन युग के विधि क्षेत्रों पर पड़ा। फिर भला साहित्य क्यों अछूता रहता? जबकि पुरानी मान्यता है कि, साहित्य समाज का दर्पण होता है?

उपरोक्त सभी घटनाओं एवं विचारों का प्रभाव द्विवेदी युगीन साहित्य पर पड़ा, जिसके फलस्वरूप साहित्य में अतीत का गौरवगान, पराधीनता की तत्कालीन स्थिति का वर्णन, मातृभूमि का दैवीकरण, राष्ट्रीय मुक्ति अभियान का समर्थन, वैयक्तिक अनुभूति और स्वराज्य की अभिलाषा आदि कई रूपों में अभिव्यक्ति हुई। इस युग में अतीत को समाज के व्यापक आयामों में देखा जा सकता है। इसके प्रमाण में मैथिलीशरण गुप्त और 'हरिऔध' के काव्य-साहित्य का उदाहरण दिया जा सकता है। सियाराम शरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय और केशव प्रसाद मिश्र आदि ने देश-प्रेम तथा जनता की गरीबी, शोषण, अज्ञान और निरक्षरता आदि पर कविताएं लिखकर पाठक को सोचने के लिए प्रेरित किया। श्रीधर पाठक, मुकुटधर पांडेय, रामनरेश त्रिपाठी और बालमुकुंद गुप्त आदि की रचनाओं में वैयक्तिक अनभूति के स्वर को देखा जा सकता है।

द्विवेदीजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। फिर भी इनकी ख्याति "सरस्वती" पत्रिका के संपादक के रूप में अधिक है। यह पत्रिका हिंदी-भाषी जनता की सर्वमान्य जातीय पत्रिका थी। द्विवेदीजी ने जीवन में बहुत उतार-चढ़ाव देखे थे। उनका बचपन का जीवन बहुत कष्टमय था, तथापि वे आजीवन मूल्यों की लड़ाई लड़ते रहे। इसी संदर्भ में उन्होंने अपने जीवन के चार आदर्श निश्चित कर लिए। (1) वक्त की पाबंदी करना (2) रिश्वत न लेना (3) अपना काम ईमानदारी से करना और (4) ज्ञान वृद्धि के लिए सतत प्रयत्न करते रहना। इन चार सिद्धांतों का पालन द्विवेदीजी मृत्युपर्यंत करते रहे।

द्विवेदीजी ऐसे-वैसे संपादक नहीं थे, वे सिद्धांतवादी और सिद्धांत-पालक संपादक थे। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार- "संस्कृत साहित्य का पुरूनत्थान, खड़ी बोली कविता का उन्नयन, नवीन पश्चिमी शैली की सहायता से भावाभिव्यंजना, संसार की वर्तमान प्रगति का परिचय, साथ ही प्राचीन भारत के गौरव की रक्षा प्रभृति जो कुछ उनके लक्ष्य थे, उनकी प्राप्ति अपनी निश्चित धारणा के अनुसार 'सरस्वती' के द्वारा करना उनका सिद्धांत था। अतः 'द्विवेदी' काल की 'सरस्वती' में केवल द्विवेदी जी की भाषा की प्रतिमा ही गठित नहीं है; उनके विचारों का व्यापक प्रतिबिंब भी उसमें पड़ा है। द्विवेदीजी के दार्शनिक और अध्यात्मिक लेखों पर उनके कर्मठ जीवन और अंतर की अनुभूति की छाप लगी है; उनमें विचारों की श्रृंखला भी है और उनका क्रम भी निर्धारित है।"

द्विवेदीजी का दृष्टिकोण सुधारवादी था। उन्होंने नायिका-भेद, चमत्कार प्रदर्शन और समस्यापूर्ति के स्थान पर प्राचीन ऐतिहासिक और पौराणिक महापुरुषों के

आदर्श-चरित्रों को लेकर काव्य लिखने की प्रेरणा दी। 'गुप्त' और हरिऔध ने इसका निर्वाह अपनी रचनाओं के माध्यम से किया। 'गुप्त' जी तो द्विवेदीजी को अपना गुरू मानते थे। द्विवेदीजी ने ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली हिंदी के महत्व को स्थापित किया। वस्तुतः उसे भाषा परिवर्तन का युग कहा गया। इस संबंध में 'सरस्वती'के जुलाई 1901ई0 के अंक में 'कवि-कर्तव्य' लेख में द्विवेदीजी ने अपने विचार व्यक्त किए हैं- ''गद्य और पद्य की भाषा पृथक-पृथक न होनी चाहिए। यह निश्चित है कि किसी समय बोल-चाल की हिंदी भाषा, ब्रजभाषा की कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी। इसलिए कवियों को चाहिए कि वे क्रम-क्रम से गद्य की भाषा में कविता आरंभ कर दें।''

द्विवेदी जी ने हिंदी में खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कराने में आशातीत सफलता प्राप्त की। वे स्वयं आदर्शों से बंधे थे। विषय की दृष्टि से काव्य का व्यापक विस्तार एवं समाजीकरण हुआ। रूप, रस, गंध और सौंदर्य के मोह से द्विवेदी जी कविता को बचाना चाहते थे, ताकि नैतिकता और आदर्श पर आघात न हो सके।

1894 ई0 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा का जन्म हुआ। इसके साथ-ही -साथ राधा कृष्ण दास, बदरीनारायण चौधरी, कार्तिक प्रसाद खत्री, प्रतापनारायण मिश्र, श्रीधर पाठक, राय देवीप्रसाद पूर्ण, बालमुकुंद गुप्त, दुर्गा प्रसाद मिश्र, अमृतलाल चक्रवर्ती, किशोरी लाल गोस्वामी, हरिऔध, रत्नाकर, महावीर प्रसाद द्विवेदी, बालकृष्ण भट्ट और देवकीनंदन खत्री अपने आप में एक-एक संस्था थें। इस युग का विशेष महत्व था, हिंदी में नए साहित्य का सृजन, हिंदी-प्रकाशन तथा हिंदी-पत्रकारिता का विकास। ईश्वर चंद्र विद्यासागर, बालगंगाधर तिलक और पंडित मदन मोहन मालवीय भारत के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का माध्यम हिंदी को ही मानते थे।

द्विवेदी-युग के सर्वांगीण विकास से हिंदी का एक प्रबुद्ध पाठक वर्ग तैयार हुआ। इस समुदाय ने देश की वास्तविक आवश्यकता, अपने देश में अपनी भाषा को ठीक-ठीक पहचान लिया था और यह भी तय कर लिया था कि, हिंदी में ही राष्ट्र-भाषा होने की शक्ति है। हिंदी ही सारे राष्ट्र को एक सूत्र में बांध सकती है । भाषा के संबंध में डॉ. विद्या निवास मिश्र के विचार द्विवेदी युग को प्रासंगिक बना देते हैं। मिश्र जी का कहना है कि- ''भाषा के मंथन का अर्थ भाषा के संस्कार को उभारना । भाषा लड़ाई के काम में भी आती है, सजावट के काम में आती है, भाषा कुछ लोगों को नशा भी दे सकती है और चंद्रमा की तरह आह्लाद देने वाली हो सकती है, कामधेनु और कल्पतरू बन सकती है, लक्ष्मी की तरह संपन्नता की ओर ले जा सकती है। यज्ञपात्र बनकर अध्यात्मकशक्ति बन सकती है। भाषा वाहन भी हो सकती है, पर उसकी वास्तविक अर्थवत्ता अमृत होना है।''

द्विवेदी-युग में संस्कृत लोक की भाषा नहीं थी। फारसी का स्थान धीरे-धीरे अंग्रेजी ने ले लिया था। इससे देश में एक संकुचित वर्ग का उदय हुआ, जो सर्वथा प्रतिक्रियावादी था। उर्दू कृत्रिम भाषा थी, उसका क्षेत्र भी बहुत संकुचित था। द्विवेदी-युग

के संदर्भ में **राय कृष्ण दास** ने लिखा है कि "देश को बीसवीं शती में लाना था। राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक उथल-पुथल हो रही थी। अनुसंधान, अवेषण के चरण बढ़ रहे थे। दर्शन, कला, काव्य, साहित्य, विज्ञान तकनीक, कानून जैसे शास्त्र कहां-से-कहां बढ़े जा रहे थे। सर्वोपरि ब्रिटिश और फ्रांसीसी साम्राज्यवाद से पिसती हुई विश्व की जनता कसमसा रही थी।"

द्विवेदी-युग का साहित्य आदर्शमूलक साहित्य था, जिसका उद्देश्य शिक्षा देना था। विषय चयन की दृष्टि से भी इस युग के साहित्यकारों ने व्यापक दृष्टिकोण अपनाया। मानव, प्रकृति, ईश्वर आदि विषयों पर नवीन दृष्टि अपनाई, हिंदी कविता को उपयोगिता से जोड़ा। कविता आदर्शोंमुख होने लगी। राष्ट्रीयता, मानवतावाद, नैतिकता, और आदर्शवाद कविता के प्रमुख विषय बने। इस कारण इतिवृत्तात्मकता का समावेश कुछ अधिक ही हुआ। इस युग का साहित्य आदर्शमूलक साहित्य था, जो कि समाज के नैतिक मूल्यों पर आधारित था, जिसका उद्देश्य शिक्षा देना था। विशेषरूप से राष्ट्रीय उद्बोध न और नवजागरण में द्विवेदी-साहित्य प्रमुख था। इस संबंध में **डॉ. रामविलास शर्मा** का मन्तव्य है कि- "इस युग में शिक्षित पाठकों का वर्ग बहुत सीमित था। संस्कृत और उसके साथ अरबी-फारसी की मूल पुस्तकें या उनके अनुवाद छापने पर बड़ा जोर था। इनके अलावा जनसाधारण के लिए ऐसा कथा-साहित्य छपता था, जो काव्य के नायिका भेद का गद्यात्मक प्रतिरूप था। ऐसी हालत में द्विवेदीजी और उनके सहयोगियों को अपना नवजागरण-कार्य संपादित करना था। वह किस तरह का साहित्य प्रकाशित होते देखना चाहते थे, इसका ज्ञान उनके इन वाक्यों से होता है, "अब शिक्षित जनों का ध्यान देशोन्नति की तरफ जाने लगा है; शिक्षा-प्रचार की तरफ जाने लगा है; विद्या, विज्ञान और कला-कौशल के अभ्युदय की तरफ जाने लगा है।"

द्विवेदीजी 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से "गुरू-कुम्हार शिशु कुंभ' है की भूमिका का निर्वाह करते थे। होनहार लेखकों की पहचान करके उनका उत्साह वध न करते थे और कहीं कुछ कमी रहने पर मीठी फटकार भी देते थे। इस संबंध में डॉ. राम विलास शर्मा लिखते हैं कि "द्विवेदीजी की कोमलता और कठोरता दोनों का स्रोत एक ही था। यह स्रोत था हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति उनकी निष्ठा। इस निष्ठा के कारण जिसे वह अवांच्छित समझते थे, उसकी कठोर आलोचना करते थे, किंतु इसमें व्यक्तिगत रागद्वेष बहुत कम होता था।" वैसे इस काल में प्रेमचंद और कृष्ण बिहारी मिश्र द्वारा संपादित 'माधुरी' और निराला द्वारा संपादित 'सुधा' तथा कालांतर में प्रेमचंद द्वारा संपादित 'हंस' अपने-अपने ढंग की विशिष्ट पत्रिकाएं थी, पर 'सरस्वती' की तरह उन्हें सर्वमान्य जातीय गौरव प्राप्त नहीं था।

द्विवेदीजी ने अपने अथक प्रयासों से 'सरस्वती' पत्रिका को उच्चता के शिखर पर पहुंचाया। वे स्वयं सात भाषाओं के ज्ञाता थे। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने और हिंदी उर्दू के अंतर्विरोधों को दूर करने का अथक प्रयास उन्होंने किया। इस पत्रिका के माध्यम से उन्होंने भाषा का ही परिष्कार नहीं किया, अपितु भारतीय ग्रामीण मजदूर-वर्ग की

दशा से भी अवगत कराया। उनका कथन है कि- "इन 70 फीसदी किसानों की दुर्गति का ज्ञान शहरों में मेंज-कुर्सी लगाकर बैठने और मोटरकारों पर घूमने वालों को नहीं हो सकता। इन लोगों का हाहाकार इनके गंदे गांवों में घूमने, इनके साथ रहने और इनसे बात-चीत करने से ही हो सकता है। प्रजा के प्रतिनिधि बनने का दम भरनेवाले कितने मानवीय महाशय वर्तमान कांशिलों में ऐसे हैं जिन्हें इन बेचारों की दुर्गति का ज्ञान हो?"

द्विवेदीजी के ये विचार आज के राजनेताओं की कलई खोलकर रख देते हैं। आजादी के बाद 'स्व' केंद्रित राजनीति को काफी बढ़ावा मिला है। थोड़े फेरबदल के साथ स्थितियां वही हैं, जो कि बीसवीं सदी के प्रारंभ में थी । उस समय कम-से-कम मूल्यों का इतना बिखराव नहीं हुआ था, जितना कि आज हो रहा हैं। द्विवेदीजी दूरदृष्टि वाले साहित्यकार थे। उन्होंने गांवों में बसे भारतीय जनमानस की आंतरिक धड़कनों को अनुभव किया था।

द्विवेदीजी बड़े साहित्यकार और संपादक के साथ-साथ वैसे राजनीतिक दृष्टा और अर्थशास्त्री भी थे। 'सम्पत्तिशास्त्र, की भूमिका में उनके द्वारा दिए गए वक्तव्यों से हम उनकी आंतरिक पीड़ा को समझ सकते हैं। "हिन्दुस्तान सम्पत्ति हीन देश है। यहां सम्पत्ति की बहुत कमी है। जिधर आप देखेंगे उधर ही आंख को दरिद्र देवता का अभिनय किसी न किसी रूप में अवश्य ही देख पड़ेगा। परन्तु इस दुर्दमनीय दारिद्र को देखकर भी कितने आदमी ऐसे हैं जिनको उसका कारण जानने की उत्कण्ठा होती है? यथेष्ठ भोजन-वस्तु न मिलने से करोड़ों आदमी जो अनेक प्रकार के कष्ट पा रहे हैं, उनका दूर किया जाना क्या किसी तरह सम्भव नहीं? गली कूचों में, सब कहीं, धनाभाव के कारण जो कारूणिक क्रंदन सुनाई पड़ता है उसके बंद करने का क्या कोई इलाज नहीं? हर गांव और हर शहर में जो अस्थि-चर्म्मावशिष्ट मनुष्यों के समूह आते-जाते देख पड़ते हैं उनकी अवस्था उन्नत करने का क्या कोई साधन नहीं? बताइए तो सही, कितने आदमी ऐसे हैं जिनके मन में इस तरह के प्रश्न उत्पन्न होते हैं?"

द्विवेदीजी की 'संपत्तिशास्त्र' पुस्तक में संपूर्ण अंग्रेजी शासन-व्यवस्था एवं तत्कालीन भारतीय समाज की झलक मिलती है। इसमें अंग्रेजों के शोषण के खिलाफ आक्रोश और भारतीय बहुसंख्यक किसान और मजदूर वर्ग के प्रति सहानुभूति के स्वर विद्यमान हैं। द्विवेदीजी ने उद्योगीकरण, तालेबंदी, व्यापार, ट्रेड-यूनियन, किसानों का संगठन, न्यूटन और भास्कराचार्य आदि के विषय में विस्तृत रूप से अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनका कहना था कि मजदूर संगठित होकर अपना भाग्य बदल सकते हैं। किसान और मजदूर संघर्ष के द्वारा एक नए भारत के निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। इसकी प्रेरणा उन्हें रूस आदि अन्य देशों से लेनी चाहिए । यहां द्विवेदीजी रूस के साम्यवाद से प्रभावित दीख पड़ते हैं। इस संबंध में डॉ. शर्मा का विचार इस प्रकार है- "द्विवेदी जी ने संमत्तिशास्त्र और इतिहास के बारे में जो कुछ लिखा है, उससे समाज विज्ञान और इतिहास लेखन के विज्ञान की नवीन रूपरेखाएं निश्चित होती हैं। इस

दृष्टिकोण से उन्होंने भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक विकास का नवीन मूल्यांकन किया । एक ओर उन्होंने इस देश के प्राचीन दर्शन, विज्ञान, साहित्य तथा संस्कृति के अन्य अंगों पर हमें गर्व करना सिखाया, एशिया के सांस्कृतिक मानचित्र में भारत के गौरवपूर्ण स्थान पर ध्यान केंद्रित किया, दूसरी ओर उन्होंने सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक रूढ़ियों का तीव्र खंडन किया और उस विवेक परंपरा का उल्लेख सहानुभूतिपूर्वक किया जिसका संबंध चार्वाक और बृहस्पति से जोड़ा जाता है। अध्यात्मवादी मान्यताओं, धर्मशास्त्रों की स्थापनाओं को उन्होंने नई-विवेक-दृष्टि से परखना सिखाया। द्विवदीजी जाति और राष्ट्र का संबंध पहचाना । भारत जैसे बहुजातीय राष्ट्र में संपर्क भाषा की आवश्यकता पर बल दिया'' ।

द्विवेदी-युग में जीवन के सभी क्षेत्रों में यह चिंतन एवं अनुष्ठान चल रहा था कि, व्यक्ति और समाज कैसे आज की परिस्थिति में शाप-ताप-मुक्त हो। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भारतेंदु- युग में ही नई-नई विधाओं की शुरूआत हो गयी थी जिस पर रीतिकाल का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। द्विवेदी-युग तक आते-आते यह प्रभाव धूमिल होता हुआ दिखाई देता है। भारतेंदु युग में जिन नई गद्य विधाओं का जन्म हुआ था उनमें आलोचना, निबंध, नाटक और कथा-साहित्य आदि प्रमुख हैं।

भारतेंदु युगीन आलोचना मात्र रचनाकारों और कृतियों की त्रुटियों का उद्‌घाटन करने तक सीमित थी। द्विवेदी-युग मे आलोचना की दृष्टि में पश्चिम के आलोचकों की कृतियों से परिष्कार आया। यह युग व्यापक साहित्यिक मूल्यों एवं मान्यता के आंदोलनों का था। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की आलोचना पद्धतियों के दर्शन इस युग में हुए। टीका लेखन, तुलनात्मक आलोचना, व्यावहारिक समीक्षा, इतिहास लेखन और शोधपरक आलोचना आदि का उदय हुआ, जिनमें प्रमुख रूप से जगन्नाथ दास-रत्नाकर, पं. पद्मसिंह शर्मा, लालाभगवानदीन, मिश्रबंधु, बालमुकुंदगुप्त और श्याम सुंदर दास आदि आते हैं। द्विवेदीजी सैद्धांतिक समीक्षा के प्रबल समर्थक थे। जीवन में आदर्श, सुधार, चरित्र, ज्ञान विस्तार, देश और भाषा प्रेम तथा त्याग के वे समर्थक तथा पोषक थे। कालांतर में आचार्य रामचंद्र शुक्ल समीक्षाचार्य माने और जाने गए ।

द्विवेदी-युग में निबंध की अपेक्षा लेख व्यापक क्षेत्र में एवं बड़े पैमाने पर लिखे गए। धर्म, इतिहास, राजनीति, राष्ट्र-प्रेम, जीवन- चरित्र, शिक्षा, सामाजिक कुप्रथा, उद्योग, विज्ञान, लोकजीवन, लोकाचार, यात्रा, साहस, साहित्य, भाषा, प्रकृति, मनोविज्ञान और पुरातत्व इत्यादि जीवन से संबंधित सभी विषयों पर लेख लिखे गए। इस युग में धर्म को श्रद्धा के मंदिर से उतारकर जीवन के साथ जोड़ने का प्रयास लेखकों ने किया। शैली की दृष्टि से वर्णनात्मक से लेकर विवेचनात्मक शैली तक के दर्शन इस युग के निबंधों में मिलते हैं। आदर्शवादी होने के कारण व्यंग्य- विनोद और रसात्मकता का अभाव इस युग में है। इस युग के निबंधकारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, बालमुकुंद गुप्त, पद्म सिंह शर्मा, माधव प्रसाद मिश्र, सरदार पूर्णसिंह, चंद्रधर शर्मा गुलेरी और कृष्ण बिहारी मिश्र की महिमा ऐतिहासिक महत्व की है। इसके साथ ही जिनके द्वारा निबंध

विधा की सशक्त शुरूआत हुई और जिन्होंने अपने कृतित्व का शुभारंभ किया, उनमें बाबू श्यामसुंदर दास, रामचंद्र शुक्ल, गुलाबराय, सपूर्णानंद और जयशंकर प्रसाद आदि हैं।

द्विवेदी-युग नाटकों की दृष्टि से सूना लगता है। इस युग में मूल रचना की अपेक्षा नाटक के क्षेत्र में अनुवाद का स्वर मुखर रहा है। हिंदी में संस्कृत, मराठी, गुजराती और अंग्रेजी के नाटकों का अनुवाद किया गया। मौलिक नाटकों के सृजन के अभाव से द्विवेदीजी काफी खिन्न थे। व्यावसायिक रंगमंच, पारसी नाटक कंपनियों के हाथ में था। पैसा कमाना इनका मुख्य उद्देश्य था। साहित्य के मूल्य से इनका कोई संबंध नहीं था। बनारस और प्रयाग में स्थापित कुछ नाट्यमंडलियों ने साहित्य की दृष्टि से सराहनीय कार्य किया। आगे चलकर इसका विकास हुआ।

इस युग का उपन्यास-साहित्य प्रारंभिक अवस्था का है, जिसमें तिलस्म और ऐयारी प्रधान, रोमांसमूलक, अपराध प्रधान, जासूसी कथाएं, इतिहास पर आधारित रोमांस, सामान्य रोमानी कथाएं और सामाजिक उपन्यास लिखे गए। बाबू देवकीनंदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, दुर्गा प्रसाद खत्री, भुवनेश्वर और चतुरसेन शास्त्री आदि इस युग के प्रमुख उपन्यासकार हैं। दुःखद प्रश्न है कि इन उपन्यासकारों ने युगविशेष की धड़कन को अपनी रचनाओं में विशेष स्थान नहीं दिया। उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद का आगमन इस युग की महान देन हैं जिन्होंने उपन्यास को जन-जीवन से जोड़ा और हिंदी उपन्यास के धरातल को नया मान दिया। डॉ. राम विलास शर्मा लिखते हैं कि "गांवों की जिस बदहाली का चित्रण द्विवेदीजी ने 'संपत्तिशास्त्र' में किया है, वह सब प्रेमचंद के कथा साहित्य की पृष्ठभूमि है।"

भारतीय किसानों और मजदूरों के प्रति जो पीड़ा द्विवेदीजी के मन में थी, उसी पीड़ा की अभिव्यक्ति प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों में दिखाई देती है। द्विवेदी-युगीन आदर्शों से प्रेमचंद अंत तक प्रभावित थे। इस संबंध में आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी का विचार है कि- "द्विवेदीजी अपने युग के उस साहित्यिक आदर्शवाद के जनक हैं, जो समय पाकर प्रेमचंद आदि के उपन्यास में फूला-फला। अपनी विशेषताओं और त्रुटियों से समन्वित इस आदर्शवाद की महिमा हमें स्वीकार करनी चाहिए। मनुष्य में 'सत्' के प्रति जो पक्षपात रहता है, वह जब उसकी साहित्य-रचना का नियंत्रण करने लगता है, तब साहित्य में आदर्शवाद का युग आता है।"

वर्त्तमान संदर्भ में बौद्धिकता के प्रभाव के कारण आदर्शवाद का प्रभाव क्षीण होता जा रहा है। कथनी और करनी की एकरूपता के अंतर्गत ही आदर्शवाद अपनी गुणवत्ता कायम रख सकता है; बशर्ते ईमानदारी, त्याग और संकल्प की भावना से इसका पालन किया जाए। इससे व्यक्ति और समाज दोनों का भला हो सकता है, लेकिन इसके लिए भौतिक मूल्यों के साथ-साथ अध्यात्मिक मूल्यों का होना जरूरी है। पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण द्विवेदी युगीन आदर्शवादी नैतिकता असंदिग्ध है।

डॉ. शर्मा का मन्तव्य है कि "द्विवेदी युग की श्रेष्ठ कलात्मक उपलब्धि प्रेमचंद

हैं; अपने कथा-साहित्य में प्रेमचंद ने जिस भारत का चित्र खींचा है, उसका विश्लेषण ''संपत्तिशास्त्र'' के बिना नहीं हो सकता।'संपत्तिशास्त्र' वह ज्ञान-कांड है जिसका कलात्मक प्रतिफलन 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' है ।

आधुनिक हिंदी कहानियों की शुरूआत द्विवेदी-युग से ही मानी जाती है । हिंदी की कुछ प्रथम कहानियों का प्रकाशन 'सरस्वती' के माध्यम से ही हुआ । वैसे प्रौढ़ कहानियों के लेखन का शुभारंभ चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की 'उसने कहा था' कहानी से माना जाता है, जो कि 1916 ई. में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी । यह कहानी कथ्य और भाषा की दृष्टि से नई ऊर्जा के साथ आई । इस काल में अनूदित कहानियों का प्रचलन भी जोरों पर था । राधाकृष्णदास, पार्वतीनंदन और रूपनारायण पांडेय ने अंगरेजी, बंगला और संस्कृत कहानियों का हिंदी में अनुवाद किया । इनका प्रकाशन 'सरस्वती'में हुआ । अनूदिन कहानियों के साथ-साथ हिंदी में मौलिक कहानी लेखन की शुरूआत हुई; जिसका संबंध जीवन और जगत से जुड़ा । किशोरीलाल गोस्वामी, केशव प्रसाद सिंह, महावीर प्रसाद द्विवेदी, शुक्ल, वृंदावनलाल वर्मा और गुप्तजी प्रारम्भिक काल के कहानीकार हैं । चंद्रधर शर्मा गुलेरी, 'प्रसाद', 'प्रेमचंद', सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि प्रौढ़काल के कहानीकार माने जाते हैं । 'सरस्वती' पत्रिका के साथ-ही-साथ हिंदी में प्रौढ़ कहानी लेखन के विकास में 'इंदु' पत्रिका का भी योगदान महत्वपूर्ण है । द्विवेदीजी ने 'स्वर्ग की झलक', 'खानखाना, 'सुमेरूपर्वत', 'शाहजहां' और 'शायरों के शाहंशाह' आदि कहानियां 'सरस्वती' में लिखीं। ये कहानियां 1903 ई0 से 1911 ई0 के बीच प्रकाशित हुई ।

द्विवेदी- युग का कहानी-साहित्य अपनी विशेषताओं और गुणधर्म के कारण भावी विकास की दिशा के लिए नींव का पत्थर बना । द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' और प्रसाद ने 'इंदु' पत्रिका के माध्यम से इस क्षेत्र में रचनाकारों का एक वर्ग तैयार किया।

भारतेंदु ने निज भाषा के महत्व को स्थापित करते हुए देशप्रेम को भाषाप्रेम से जोड़ा था । इस युग में भाषा के स्वरूप, उसकी प्रकृति और व्याकरण पर खूब बहसें हुईं और अंततः देश-प्रेम, भाषा-प्रेम और लिपि-प्रेम एकमेव हो गया । व्याकरण के क्षेत्र में कामता प्रसाद गुरू ने उल्लेखनीय कार्य किया । द्विवेदी-युग के साहित्यकारों में तीन प्रधान हैं - 'गुप्त', 'शुक्ल' और 'प्रेमचंद' । ये तीनों नीतिवादी, बुद्धिवादी और आदर्शवादी लेखक थे, जिन्होंने मध्यवर्ग में जन्मलेकर मध्यवर्गी पराजय के दर्शन नहीं किए थे ।

द्विवेदी-युग की जहां अपनी तमाम विशेषताएं थीं, वहीं कुछ खामियां भी हैं। बात 'सरस्वती' पत्रिका से ही शुरू करते हैं, क्योंकि द्विवेदीजी का मूलमंत्र तो यहीं से शुरू होता है । ये पत्रिका 'सरस्वती' आगे चलकर जिस हद तक साम्राज्यवाद विरोधी होती चली गई, उसी सीमा तक यह सामंतवाद विरोधी नहीं रही । कालांतर में, कुछ सीमा तक तो उसमें सामंती मूल्यों को समर्थन दिया जाने लगा । इस संबंध में रामबृक्ष का मन्तव्य है कि ''स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी की रचनाओं में भी सामंत-

विरोधी स्वर बहुत दबा-दबा सा है । 'संपत्तिशास्त्र' में यद्यपि विलास द्रव्यों को उत्पन्न करने और प्रयोग करने वालों को देश का दुश्मन करार दिया गया है, लेकिन उनका यह पक्ष काफी कमजोर है । 'संपत्तिशास्त्र' में जमीन और लगान की समस्याओं पर विचार करते हुए द्विवेदीजी ने कहीं भी किसानों और जमींदारों के परस्पर हित-विरोध की चर्चा नहीं की; किसानों और जमींदारों के समान-हित को ही रेखांकित किया गया है ।''[1]

द्विवेदीजी की भाषा-शैली बहुत कुछ उनकी परिस्थित की उपज है । वैसे भारतेंदु युग से ही भावों,विचारों और विषयों के विचार के साथ-साथ अनेक शास्त्र-संबंधी, न्याय-संबंधी, ज्ञान-विज्ञान- संबंधी, अंग्रेजी, बंगला, मराठी, संस्कृत आदि शब्द ग्रहणकर भाषा की अभिव्यंजना शक्ति बढ़ाई गई । द्विवेदी युग में वह और भी आगे बढ़ी । डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कथन है कि ''जो बात द्विवेदी युग में हुई, वह यह थी कि भाषा को परिष्कृत करने और शब्द भंडार बढ़ाने की धुन में लेखकगण संस्कृत शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग करने लगे । खड़ी बोली आवश्यकता से अधिक संस्कृत गर्भित होती गई और जन बोलियों से उसका संपर्क न रहा । यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इससे खड़ी बोली के सहज-स्वाभाविक विकास में बाधा पड़ी है ।''

द्विवेदी-युग में काव्य रूप, शैली और छंदविधान में भी व्यापकता आई। प्रबंध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य लिखे गए । गीतों और लोकगीतों का जोर भी बढ़ा। द्विवेदी-युग में राजनीति, समाज, धर्म, दर्शन, संस्कृति और साहित्य में अनेक उतार-चढ़ाव आए । विशेषकर साहित्य के क्षेत्र में, भाषा एवं विषय दोनों क्षेत्रों में सुधार आया । भाषा के क्षेत्र में खड़ी बोली का वर्चस्व स्थापित हुआ ; प्राचीन घिसी-पिटी कविताओं का स्थान राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताओं ने लिया । ईश्वर और भक्ति की अपेक्षा मानव कविता का केंद्र बिंदु बना । समाजसुधारवादी संस्थाओं का भी व्यापक प्रभाव इस युग में पड़ा; फलस्वरूप एक नवीन मानवतावाद का जन्म हुआ । सामाजिक विसंगतियों और कुरीतियों के विरूद्ध पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के प्रभाव के कारण लेखनी उठी । किसान, मजदूर और नारी दुर्दशा की ओर साहित्यकारों का ध्यान गया। नारी को कामिनी और भोग्या के स्थान पर मा, पुत्री और भगिनी के रूप में चित्रित किया गया । उसे उसके दायित्वों के प्रति सचेत किया गया । इसी समय में लोकमान्य तिलक ने राजनीति और धर्म को एक नई दिशा प्रदान की । द्विवेदी युग के प्रायः अंत में महात्मागांधी का आगमन राष्ट्रीय क्षितिज पर हो चुका था, जिसके कारण धर्म, दर्शन, समाज और राजनीति में एक नया मोड़ आया ।

द्विवेदी-युगीन साहित्यकारों ने वस्तुतः पूरे समाज को मोह-निद्रा से उठाने का कार्य किया । गुप्त जी के शब्दों में 'क्या थे क्या हो गए' के माध्यम से साहित्यकारों ने देश के गरिमामय अतीत का गुणगानकर, वर्तमान दशा की अधोगति पर आंसू भी बहाए और सुनहरे भविष्य की मंगल कामना भी की । इस प्रकार इस समय का साहित्य अवास्तविक कल्पना के शिखर से उतरकर यथार्थ के ठोस धरातल पर प्रतिष्ठित हुआ।

एक नया आत्म विश्वास पैदा हुआ और भाग्य की अपेक्षा, कर्म पर जोर दिया गया । प्रकृति को नवीन रूपों में देखा गया । आदर्शोन्मुख यथार्थ का चित्रण साहित्य में भरपूर हुआ । भौतिकता के प्रभाव के कारण लोगों की सोच-समझ और चिंतन में बदलाव आया । साम्यवादी विचारधारा का उदय हुआ । वैयक्तिक प्रेम का स्थान जाति-प्रेम, देशप्रेम और भाषाप्रेम ने लिया ।

इस प्रकार द्विवेदी-युग के ज्ञान-कांड में ही नहीं, उस युग के कलात्मक साहित्य में भी हमारे सीखने समझने के लिए बहुत कुछ है । आज के सामाजिक परिवेश, वर्तमान भारत की राजनीति और सांस्कृतिक समस्याओं को हम जितना ही पहचानेंगे, उतना ही द्विवेदी-युग को समझने में सहायता मिलेगी । जितना ही उस युग की विविध प्रवृत्तियों को समझेंगे, उतना ही सही ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अपने युग को देख सकेंगे । ●